

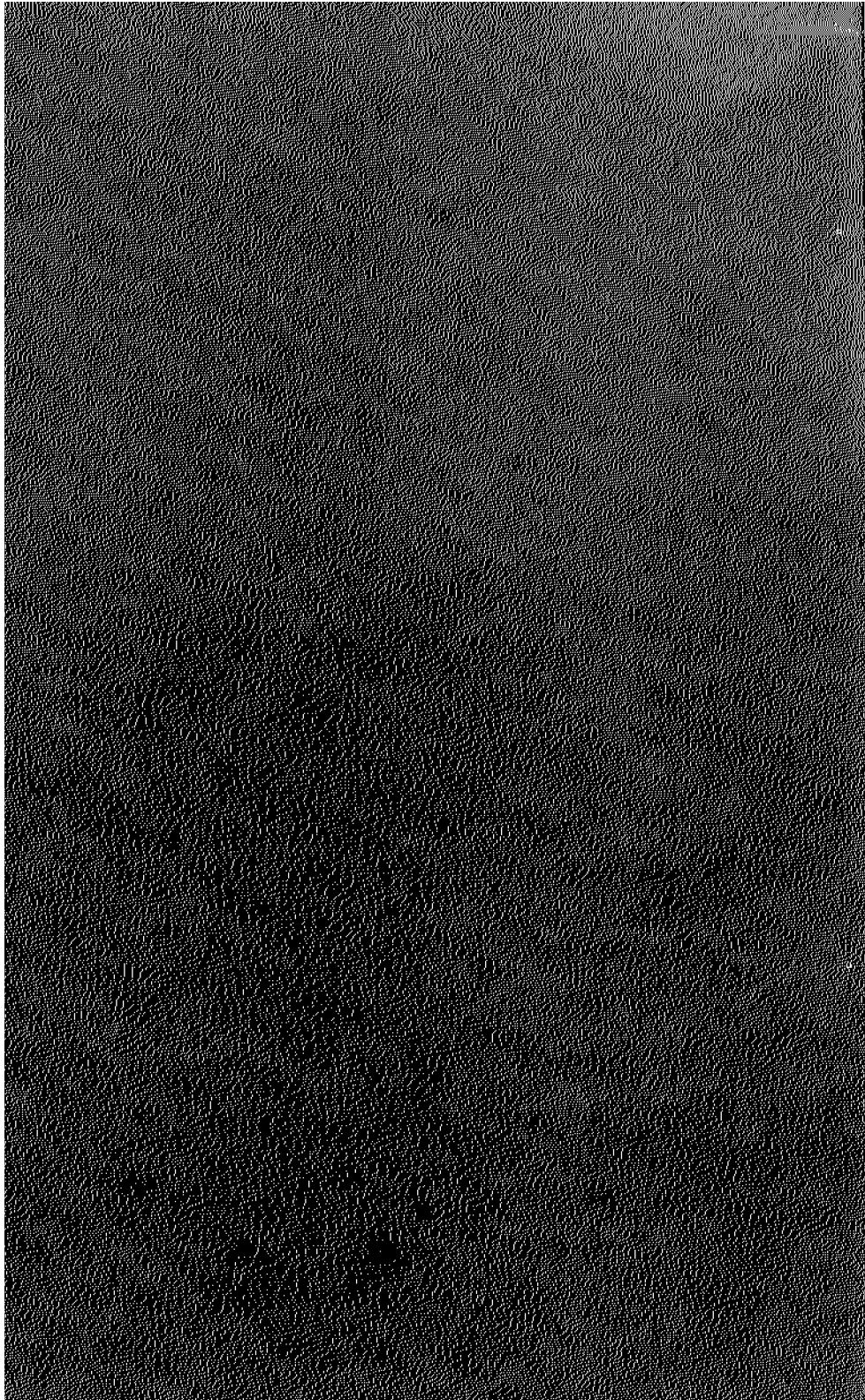
जयपुर

स्थानीय शिक्षा रपट

भेदभाव और अभाव
गरीबों में बुनियादी शिक्षा

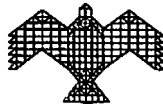


नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्स्ड स्टडीज़
बेंगलूर



भेदभाव और अभाव
गरीबों में बुनियादी शिक्षा

स्थानीय शिक्षा रपट
जयपुर



नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एडुएन्स स्टडीज़
बेंगलूर 560 012

© नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्सड स्टडीज़
2002

प्रकाशन
नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्सड स्टडीज़
इन्डीयन इन्स्टीट्यूट ऑफ कैम्पस
बेंगलूर 560 012

रपट की प्रतियाँ निम्नलिखित पता से प्राप्त की जा सकती है।

नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्सड स्टडीज़
इन्डीयन इन्स्टीट्यूट ऑफ कैम्पस
बेंगलूर 560 012
दूरभाष : 080-360 4351
ई-मेल : mgp@nias.iisc.ernet.in

एन.आइ.ए.एस. विशेष प्रकाशन 1-2002

ISBN 81-87663-24-3

मुद्रक
वर्बा नेटवर्क सर्विसेस
193, कोजी अपार्टमेंट्स, 8 मेन, 12 कोर्स
मलेश्वरम, बेंगलूर - 560 003
दूरभाष : 334 6692

यह संक्षिप्त रपट बंगलोर की नेशनल इन्स्टीट्यूट आफ एडवान्स्ड स्टडीज़ की सोश्यालाजी और सोशयल एन्थ्रोपोलाजी इकाई के द्वारा प्राथमिक शिक्षा पर कराए गए अध्ययन का हिस्सा है। फील्ड रिसर्च अक्टूबर 1999 और नवम्बर 2000 के मध्य नीचे लिखे इलाकों में कराई गयी थी— जौनपुर ब्लाक (उत्तरांचल), जयपुर (राजस्थान), खातेगांव ब्लाक (मध्यप्रदेश), बंगलोर (कर्नाटक), तंजावुर (तामिलनाडु) और चिराला (आन्ध्रप्रदेश)। सभी इलाकों की इकट्ठी रपट अलग से दी जाएगी।

स्थानीय शिक्षा की इस रपट का मकसद एक तो यह है कि जिन समुदायों के सदस्यों के साथ यह अध्ययन किया गया था उन्हें इस अध्ययन के निष्कर्षों में भागीदार बनाया जाए और दूसरे, इन्हें ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचाया जाए। इसलिए, इस रपट में खासकर शालाओं का और शालाओं की शिक्षा का ब्यौरा है। हमें उम्मीद है कि यह रपट हर इलाके में समुदाय के लोगों को, शिक्षकों को, निर्वाचित जनप्रतिनिधियों को, पालकों को, शिक्षा विभाग के कर्मचारियों को और उन सभी लोगों को उपयोगी लगेगी जो प्राथमिक शिक्षा को आगे बढ़ाने में रुचि रखते हैं।

दिगान्तर (जयपुर) ने इस अध्ययन को पूरा करने के लिए संस्थागत सहयोग दिया। फील्ड रिसर्च में कड़ी मेहनत और लगन के लिए सुचेता सिंग को विशेष धन्यवाद। रोहित धनकर,, राजाराम बादू और मनजोत कौर ने फील्ड अध्ययन शुरू करने में सहायता की। डा. अर्चना महेन्दले और सरिता

स्थानीय शिक्षा रपट - जयपुर

तुकाराम ने इस रपट को एकत्र करने और और लिखने में सहायता की। सविता शास्त्री ने डाटा को प्रोसेस किया और कला सुन्दर ने रपट का सम्पादन किया। उन सबको धन्यवाद। इस अध्ययन में भाग लेने वाले सभी छात्रों और शाला के बाहर के बच्चों को, प्रचार्यों, शिक्षकों, मातापिता और समुदाय के दूसरे सदस्यों ने जो समय दिया, धीरज रखा और सहयोग दिया उसके लिए उन्हें खासतौर से धन्यवाद।

इस शोध के लिए नेशनल इन्स्टीट्यूट आफ एडवान्स्ड स्टडीज़, बंगलोर (एन आइ ए एस) और स्पेन्सर फाउन्डेशन (शिकागो) ने सहयोग दिया था। स्थानीय शिक्षा की रपट को विकसित करने के लिए नई दिल्ली की कनाडियन हाई कमीशन के कनाडियन इन्टरनेशनल डेवलपमेंट एजेंसी (सीडा) ने सहायता दी थी।

फरवरी 2002

ए आर वासवी
एन आइ ए एस, बंगलोर

अंग्रेज़ी से अनुवाद
सुरेश, भोपाल

भेदभाव और अभाव गरीबों में बुनियादी शिक्षा

एक ऐसे नगर में, जो राज्य की राजधानी है और जिसकी अर्थव्यवस्था पर्यटन, शिल्प और व्यापार से स्पन्दित है, क्यों इतनी ज्यादा तादाद में बच्चे स्कूल के बाहर हैं? शहर की बढ़ती आबादी के मान से स्कूलों की तादाद इतनी कम क्यों है? और मजदूर तबकों के बच्चों के लिए स्कूल की पढ़ाई क्यों इतनी अरुचिकर बनी हुई है?

जयपुर के स्कूलों के हालात समझने के लिए और स्कूल में पढ़ने के बारे में गरीबों के अनुभव समझने के लिए ये सवाल महत्वपूर्ण हैं। हालांकि मजदूर तबकों के ज्यादातर मातापिता और बच्चे औपचारिक शिक्षा पाना चाहते हैं, पर सबसे पहले उनका सामना भेदभाव और अभाव से होता है। बच्चे स्कूल के अपने खराब अनुभवों के बारे में तो बताते ही हैं, पर खुद पालक भी यह महसूस करते हैं कि उनके बच्चों के साथ भेदभाव का बर्ताव किया जाता है। जैसा कि एक पालक ने बताया, “पहले शिक्षक बच्चों को पढ़ाते थे। शिक्षक और बच्चों के बीच एक रिश्ता होता था। अब छात्रों के साथ घोड़ों और गधों की तरह व्यवहार किया जाता है।” यह अध्ययन जयपुर के तीन अलग-अलग किस्म के मोहल्लों में तीन अलग-अलग तरह के स्कूलों में एक साल में किया गया है और हमने पाया है कि नगर के गरीब इलाकों में बच्चों को शिक्षा उपलब्ध नहीं है और उनके साथ शिक्षा में भेदभाव किया जाता है।

बढ़ता शहर और शिक्षा के मौके

शहरी इलाकों में मजदूर तबकों और गरीबों को शिक्षा की जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है उसे तुरन्त समझने की जरूरत है, क्योंकि ये ऐसे केन्द्र हैं जहां आबादी की बढ़ोतरी ज्यादा है। सन 2001 तक देश की आबादी का 31 फीसदी हिस्सा शहरी इलाकों में होगा और इसका 35-40 फीसदी हिस्सा शहरों की झुग्गी बस्तियों में होगा। राजस्थान के शहरों की बढ़ोतरी 39 फीसदी है जो कि देश में सबसे ऊंची है, जबकि देश की शहरी बढ़ोतरी की दर 22 फीसदी है। जयपुर की आबादी अब (2001) 55 लाख 52 हजार है। मकान, स्वास्थ्य और नागरिक सुविधाएं न होने के साथ ही गरीबों के बच्चों को स्कूल की सुविधाएं नहीं हैं। हालांकि ऐसा मान लिया गया है कि शहरी इलाकों में शिक्षा के ज्यादा अवसर उपलब्ध होते हैं पर शहर की बेतरतीब और तेज बढ़ोतरी तथा वहां की आबादी में शिक्षा की ऐसी प्रणाली मुहय्या है, जिससे गरीबों की जरूरतें पूरी हो सकें।

शहरों के गरीबों के लिए जो स्कूल हैं उनमें बहुत सी समस्याएं हैं। एक तो यही बात है कि झुग्गी बस्तियां गैरकानूनी बस्तियां मानी जाती हैं और सरकार इन इलाकों में स्कूल खोलने को न तो प्रोत्साहन देती हैं और न सहायता करती हैं। दूसरे, इन इलाकों में स्कूलों को चलाना भी ज्यादा समस्यापूर्ण है। बच्चों की बढ़ती तादाद के लिए स्कूल खोलने की चिन्ता न तो सरकार को है, न लोगों को और न संस्थाओं को।

जयपुर की साक्षरता का स्तर 1991 में 50 फीसदी (सामान्य) था जिसमें पुरुष साक्षरता 65 फीसदी और महिला साक्षरता 31 फीसदी थी। 2001 में साक्षरता के स्तर में सुधार हुआ और वह 70 फीसदी (सामान्य) हो गयी जिसमें पुरुष साक्षरता 83 फीसदी और महिला साक्षरता 56 फीसदी हो गयी। हालांकि राजस्थान में जयपुर की साक्षरता दर सबसे ज्यादा है, उसकी आबादी और स्कूलों का अनुपात बहुत विषम है। यह अनुपात 1997 में 2206 व्यक्ति प्रति प्राथमिक शाला था।

भेदभाव और अभाव

1998 में किये गए एक बेसलाइन अध्ययन से पता चलता है कि जयपुर की आबादी के गरीब तबके के लिए चल रहे स्कूलों की हालत बहुत खराब है। शहर की आबादी का 30 फीसदी हिस्सा करीब 297 झुग्गी बस्तियों में रहता है और इनमें से 205 बस्तियों (73.48 फीसदी) में सरकारी स्कूल नहीं हैं और 105 बस्तियों (37.28 फीसदी) में कोई भी स्कूल नहीं है। करीब 86 फीसदी बस्तियों में 50 फीसदी बच्चे किसी भी स्कूल में नहीं जाते। ज्यादातर (61 फीसदी) सरकारी प्राथमिक और अपर प्राथमिक शालाओं में एक ही शिक्षक है और वहां शिक्षक को पढ़ाने के अलावा कई दूसरी गैरशैक्षिक और प्रशासकीय जिम्मेदारियां भी दे दी जाती हैं। सरकारी स्कूलों की संख्या तो नाकाफी है ही, साथ ही वे ठीक से नहीं चल रहे हैं। यह इस बात से साबित हो जाता है कि फिलहाल बहुत गरीब और आर्थिक रूप से सीमान्त लोगों के बच्चे और नीचे दर्जे की जातियों के बच्चे ही वहां जाते हैं। बेसलाइन अध्ययन से पता चलता है कि शहर की कुल आबादी का 4.7 फीसदी हिस्सा अनुसूचित जाति का है और सरकारी स्कूलों में जाने वाले बच्चों में से 52 फीसदी बच्चे इसी वर्ग के हैं। सब मिलाकर अध्ययन से पता चलता है कि सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों के 72 फीसदी बच्चे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और मुस्लिम समुदायों के हैं और सिर्फ 22 फीसदी बच्चे दूसरी जातियों के हैं। शहर की बुनियादी शिक्षा की प्रणाली पर जो संकट छाया हुआ है वह इस बात से साफ है कि पांचवीं कक्षा में पहुंचने के पहले 51 फीसदी बच्चे हर साल स्कूल छोड़ देते हैं और बच्चों की एक बड़ी तादाद स्कूलों के बाहर रहती है।

बुनियादी शिक्षा मुहय्या कराने में ऐसी प्रशासकीय लापरवाही के अलावा कुछ ऐसी समस्याएं भी हैं जो शहरों के गरीब इलाकों के परिवारों और समुदायों के ढांचे और तौर तरीकों से संबंधित हैं। चूंकि ऐसे इलाकों के ज्यादातर रहवासी शारीरिक श्रम के कामों और सेवा संबंधी मजदूरी में लगे हैं इसलिए उन परिवारों की आमदनी में समय-समय पर बदलाव होता रहता है। परिणाम यह होता है कि जो बच्चे ऐसे इलाकों में रहते हैं उन्हें दोहरा नुकसान होता

स्थानीय शिक्षा रपट - जयपुर

है। एक तो, उन्हें स्कूली सुविधा नहीं मिलती और दूसरे, उन्हें अपने माता-पिता से भी सहयोग नहीं मिलता क्योंकि उनकी आमदनी अनियमित और नाकाफी होती है। इसके अलावा माता-पिता की आर्थिक अस्थिरता भी परिवार में एक जबर्दस्त सामाजिक तनाव पैदा करती है। यह बात शराबखोरी और स्त्रियों व बच्चों के परित्याग की घटनाओं से प्रकट होती है और उनके कारण बढ़ती भी है।

स्कूल के कामकाज को, शिक्षा से वंचित रहने के रूप को, और शहर में राज्य, संस्कृति और समुदाय की भूमिकाओं को ठीक से समझने के लिए हमने तीन तरह के मोहल्लों का और तीन तरह के स्कूलों का अध्ययन किया। वे थे: (1) पुराने शहर के घेर सैवाड इलाके में एक मन्दिर में लगने वाली एक सरकारी प्राथमिक शाला, (2) मनोहरपुरा कच्ची बस्ती इलाके का एक निजी स्कूल, जहां बाहर से आए कई लोग और मजदूरी करने वाले गरीब लोग काम करते हैं और रहते हैं, और (3) खो-नागोरिया के एक अर्द्ध शहरी इलाके में एक एन जी ओ द्वारा चलाया जाने वाला स्कूल। इस इलाके में 18 टोले हैं और इसे वार्ड नं. 28 के रूप में जयपुर शहर में शामिल किया जा रहा है।

इन इलाकों में जिन लोगों का अध्ययन किया गया है उनके धन्धों और वर्ग की पृष्ठभूमि का जहां तक सवाल है, वे ज्यादातर शारीरिक श्रम करनेवाले सेवा कर्मचारी, निर्माण और फुटकर मजदूर, छोटे दूकानदार, शिल्प उद्योग के कुशल और अर्द्धकुशल कारीगर हैं और शहर की सीमा में रहनेवाले कुछ खेतिहर और पशुपालक हैं। घेर सैवाड इलाके के रहवासी मुख्यतः मीणा, रैगर, बलाई, नाई, माली, गुर्जर और कुछ ब्राह्मण, जैन तथा सिक्ख परिवार के हैं। मनोहरपुरा कच्ची बस्ती में बैरवा, रैगर, कालबेलिया, बन्जारा और बलाई परिवार रहते हैं। बंगाल और मद्रास से आये कुछ परिवार भी यहां रहते हैं। खो-नागोरिया इलाके में ज्यादातर लोग नागोरिया मुसलमान हैं और बाकी लोग माली, ब्राह्मण और राजपूत हैं। इन इलाकों को और कुछ स्कूलों को इसलिए चुना गया था और उनका अध्ययन इसलिए किया गया था कि

भेदभाव और अभाव

जिससे यह समझा जा सके कि समुदाय के सदस्यों के सामाजिक और सांस्कृतिक रीति रिवाजों का स्थानीय अर्थव्यवस्था तथा राजनीति से क्या रिश्ता है, और स्कूल के कामकाज से क्या रिश्ता है। शोधकर्ता सुचेता सिंग ने स्कूलों का और उनके इलाकों का अध्ययन किया और बच्चों, माता-पिता, शिक्षकों और समुदाय के अगुवा लोगों से साक्षात्कार किया। इसके इलावा हमने तीनों स्कूलों में से हर स्कूल से 15 फीसदी बच्चे चुने और उस इलाके के स्कूल के बाहर के 15 फीसदी बच्चे चुने और उनके रहन-सहन का, आर्थिक और सामाजिक स्थिति का, उनके स्कूली और कामकाजी अनुभवों का अध्ययन किया। साक्षात्कारों से, कक्षा के अवलोकनों से और बच्चों तथा कई दूसरे लोगों से हुई चर्चा के आधार पर शहर की बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र की नीचे लिखी समस्याएं सामने आयीं।

शिक्षा के लिए सांस्कृतिक रुझान

ऐतिहासिक रूप से, उच्च शिक्षा तक कुछ बहुत ऊंची जाति के समूह और प्रशासन के आसपास के कुछ लोग ही पहुंच पाते थे। जैसा कि पीस (1980) ने जयपुर के बारे में कहा है, दूकानदारों और कारीगरों के जाति समूहों की शिक्षा तक पहुंच बहुत कम है। परिणामस्वरूप एक मोटे सांस्कृतिक रुझान की बहुत कम गुंजाइश है, हालांकि शिक्षा को ऊंचे पेशे और ऊंची सामाजिक प्रतिष्ठा का एक जरिया माना जाता है। एक लम्बे अरसे तक व्यवस्थित ढंग से शिक्षा से दूर रहने का परिणाम यह है कि अभिजात्य वर्ग में भी शिक्षा के लिए सांस्कृतिक रुझान की कमी है। यह बात जयपुर तो क्या पूरे राजस्थान में बुनियादी शिक्षा के लिए रुचि और मांग पैदा न होने देने के लिए जिम्मेदार है। एक "सामंती-व्यावसायिक" नजरिया लोकप्रिय और प्रधान संस्कृति के अधिकांश भाग में पैठ गया है। "जो लिखता है वह सवारी नहीं कर सकता" जैसी कहावतों से पता चलता है कि पढ़ने लिखने की औपचारिक परम्पराओं पर सैनिक परम्पराएं हावी हैं और उन्हें सांस्कृतिक रूप से ऊंचा माना जाता है। ऐसी संस्कृति में कारीगरी सीखने और व्यापारी कौशलों की तुलना में

स्थानीय शिक्षा रपट - जयपुर

औपचारिक शिक्षा की खास कीमत नहीं है। इसके अलावा, शिक्षा के बिना भी ऊपर उठना संभव हुआ है। इसके परिणाम स्वरूप धनवान लोग और धनवान जातियां भी शिक्षा को अपनी निजी और सामूहिक जिन्दगी के लिए महत्वपूर्ण नहीं मानते। निजी और सांस्कृतिक प्राथमिकताओं में शिक्षा का स्थान नीचा रहा है यह बात इस बात से जाहिर है कि शिक्षा पर बड़े औद्योगिक घरानों, परिवारों और जाति समूहों ने बहुत कम धन लगाया है। याने, अभिजात्य वर्ग के लोगों और समूहों को यह नहीं लगा कि शिक्षा में धन लगाने से समाज के एक बड़े हिस्से को फायदा होगा। इस प्रकार जयपुर में कोई महत्वपूर्ण शैक्षिक संस्थाएं नहीं हैं जबकि वहां भव्य महल, मन्दिर और संग्रहालय भरे पड़े हैं।

शिक्षा की तरफ सांस्कृतिक झुकाव होने की कमी का मतलब यह हुआ है कि राज्य में और जयपुर में शैक्षिक संस्था बनाने का काम बहुत सीमित रहा है। इस इलाके के सांस्कृतिक रिवाजों के कई पक्ष रहे हैं जिनके कारण शिक्षा के लिए रुचि नहीं बनी। अध्ययन के सभी इलाकों में से जयपुर ही ऐसा शहर है जहां साक्षात्कार किये गए स्कूल के बाहर के बच्चों का सबसे ज्यादा प्रतिशत (42) ऐसा था जिसने कभी स्कूल में नाम नहीं लिखाया। ज्यादातर लोगों (62 फीसदी) ने धन की समस्या को स्कूल न जाने का कारण बताया है पर यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि अगर माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजते तो इसका कारण आमदनी कम होने के साथ ही यह भी है कि शिक्षा की तरफ उनका झुकाव नहीं है और यह हकीकत कई तरह से उजागर होती है। जिन लोगों ने धन की कमी को स्कूल न भेजने का कारण बताया उनमें से 31 फीसदी बच्चों ने बताया कि उनके स्कूल में दाखिल न होने का खास कारण यह है कि उनके मातापिता की शिक्षा के प्रति रुचि नहीं है।

हाल की सघन कोशिशों से और स्वैच्छिक संस्थाओं तथा व्यक्तियों के द्वारा लोगों को जोड़े जाने से शिक्षा के प्रति रुचि पैदा होने में सहायता मिली है और ज्यादातर लोगों में शिक्षा के प्रति उत्साह बढ़ रहा है और शिक्षा से भीतरी अलगाव रखने की भावना तेजी से खत्म हो रही है। फिर भी, शिक्षा के प्रति

भेदभाव और अभाव

नए जोश के संदर्भ में भी, कई लोग औपचारिक शिक्षा को औपचारिक रोजगार से, खासकर सफेदपोश नौकरी से, जोड़ते हैं। इसलिए रोजगार के मौकों की कमी भी शिक्षा लेने के रास्ते में बाधा पैदा करती है। जैसा कि कई वयस्कों ने बताया, “जब कोई नौकरी नहीं मिलती तो शिक्षा लेने का क्या फायदा?” इसके अलावा, कई लोगों ने बताया कि शिक्षा से परायापन बढ़ जाता है क्योंकि इससे युवावर्ग अपने पुश्तैनी धन्धे को जारी रखने के लायक नहीं रह जाते और उन्हें कोई नौकरी भी नहीं मिलती। यह बात खास तौर से “पिछड़ी जातियों” के लोगों ने कही। उनका ख्याल था कि नौकरियाँ सिर्फ अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को ही मिलती हैं। चूंकि उन्हें (पिछड़ी जातियों को) नौकरियाँ नहीं मिलती तो फिर बच्चों को शिक्षित करने का क्या उपयोग है। मनोहरपुरा कच्ची बस्ती के कालबेलिया समुदाय के एक नौजवान ने कहा, “हमारे पास कोई जैक (राजनीतिक प्रभाव) नहीं है और न चैक (आर्थिक प्रभाव) है.....इसलिए हमें नौकरी नहीं मिलती। फिर हम अपने बच्चों को स्कूल जाने के लिए जोर क्यों दें?” कालबेलिया समुदाय के ज्यादातर बच्चे स्कूल नहीं जाते और बेकार भी हैं यह इस बात का सबूत है कि एक आन्तरिक मूल्य के रूप में शिक्षा को बढ़ावा देने में सफलता नहीं मिली है। इसके विपरीत, रोजगार के मौके सुनिश्चित होने के कारण अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति जैसे बलाई और मीणा के कई सदस्यों को प्रोत्साहन मिला है। चूंकि शिक्षा से उन्हें ‘आरक्षित नौकरियाँ’ मिलती हैं इसलिए उनका ख्याल है कि यह बात उनके अवसर बढ़ने का सबसे महत्वपूर्ण कारण है। अनुसूचित जातियों में स्कूल में दाखिले का स्तर ऊँचा है और वे मानते हैं कि शिक्षा पाने से उन्हें “आरक्षित नौकरियाँ” मिलना तय है।

खो—नागोरिया में मुस्लिम परिवारों के कई माता—पिता सरकारी स्कूलों में अपने बच्चों को भेजने के बारे में अनिच्छुक दिखे। वहाँ उनके बच्चों को मिलने वाली शिक्षा को वे पसंद नहीं करते थे और उनका ख्याल था कि मदरसों में दी जाने वाली शिक्षा ही उनके बच्चों के लिए ठीक है क्योंकि वहाँ

कुरान पढ़ाई जाती है। एक मुस्लिम शिक्षक ने, जो मुस्लिम समुदाय को शिक्षा को प्रेरित करने में सक्रिय था, बताया कि उसके समुदाय के कई लोग यह मानते थे कि "धर्मनिरपेक्ष" औपचारिक शिक्षा की तुलना में वह शिक्षा बेहतर है जो समुदाय के सांस्कृतिक तौर तरीकों के बारे में और मौत के बाद के जीवन के बारे में जानकारी दे। इस नजरिये का कारण यह है कि खो-नागोरिया में 14 साल से ऊपर के ज्यादातर बच्चे अपढ़ हैं और 6 से 13 साल के बीच के ज्यादातर बच्चे स्कूल नहीं जाते। फिर भी कई मुस्लिम परिवार ऐसे नजरिये को बदलना चाहते हैं और अपने बच्चों को मदरसा और स्कूल दोनों में जाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

बुनियादी शिक्षा में राज्य की मौजूदगी और गैरमौजूदगी

राज्य में शिक्षा उपलब्ध न होने के बारे में विस्तृत चर्चा होने और उस पर ध्यान दिये जाने के बावजूद राज्य द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा के लिए सीमित धन आवण्टित किया जाता है। एक ताजा अध्ययन में विश्लेषण किया गया है कि प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में आवण्टन में बहुत कम बढ़ोतरी (1980-2000 के बीच एक फीसदी) हुई है। इसके अलावा बजट का 90 फीसदी हिस्सा वेतन में ही खर्च हो जाता है और "बहुत कम धनऐसे विभिन्न शैक्षिक उपकरणों और साधनों के लिए बचता है जो कारगर शैक्षिक प्रक्रियाओं को विकसित करने में सहायक होते हैं।" आबादी की बढ़ोतरी जिस तरह से हो रही है और प्रारम्भिक स्कूल स्तर पर दाखिले जितने बढ़े हैं उन्हें देखते हुए यह कहा जा सकता है कि शहर के गरीबों को शिक्षित करने के लिए खर्च किया जाने वाला धन बहुत कम है।

शहर में बच्चों और स्कूलों का अनुपात बहुत असंतोषजनक है और मौजूदा सरकारी स्कूलों की हालत भी ठीक नहीं है। यह सब होने पर भी प्राथमिक शिक्षा से संबंधित कई मामलों से राज्य गैरहाजिर है। पर्याप्त संख्या में स्कूल उपलब्ध न कराकर,, खासकर शहर के गरीब इलाकों में, राज्य शहर में निजी

भेदभाव और अभाव

स्कूलों बाजार का बढ़ने को सीधा प्रोत्साहन दे रहा है। राज्य न सिर्फ निजी स्कूल शुरू करने के लिए सरलता से परमिट देता है बल्कि उसने निजी स्कूलों के मालिकों और प्रबन्धकों के लिए रजिस्ट्रेशन कराना वैकल्पिक कर दिया है। परिणाम यह हुआ है कि सन् 2000 के अंत में 4000 छोटे-बड़े निजी स्कूल शहर में थे जो लोअर मिडिल कक्षाएं चला रहे थे ऐसे स्कूलों के प्रबन्ध और कामकाज का न तो निरीक्षण होता है और न मूल्यांकन होता है। जैसा कि मनोहरपुरा कच्ची बस्ती के निजी स्कूल के मालिक और प्रधानाध्यापक ने बताया कि 1996 में स्कूल शुरू होने के बाद शिक्षा विभाग ने इसका निरीक्षण नहीं किया है और नियमित भ्रमण भी नहीं किया है।

शिक्षा में राज्य की गैरमौजूदगी ऐसे इलाकों में भी दिखती है, जहाँ समुदाय ने स्कूल बनाया है और राज्य ने शिक्षक देने के अलावा और कुछ नहीं किया है, जैसे खो-नगोरिया। इस स्कूल का निरीक्षण भी नहीं होता और समुदाय के कई लोग इस स्कूल को निष्क्रिय जैसा समझते हैं। इस निष्क्रियता का पता न सिर्फ उसमें दर्ज छात्रों की संख्या (1999 में 193 छात्र) से लगता है बल्कि शिक्षकों की गैर हाजिरी और इमारत की बदहाली से भी लगता है। यह सरकारी स्कूल निष्क्रिय है इसका प्रमाण यह भी है कि उस इलाके में 180 बच्चे स्कूल के बाहर थे, लेकिन ये एक स्वैच्छिक संस्था के स्कूल की प्रतीक्षा सूची में थे।

सभी बच्चों में शिक्षा के अवसर बढ़ाने के प्रति राज्य के संकल्प में कमी इस बात में भी दिखती है कि शहर में बाल श्रम पर बंदिश नहीं लगायी गयी है। हालांकि बाल श्रम का प्रचार बहुत है (बाल श्रम पर खण्ड देखें), ऐसे कोई एजेन्सी नहीं हैं जो बाल श्रम के कानून के उल्लंघन को रोकें और बच्चों के अधिकारों को मॉनीटर करें। इसी तरह उस इलाके में बाल विवाह जारी हैं और उनकी अनुमति भी है, जबकि लड़कियों को शिक्षा से वंचित रखने में इसकी भूमिका जगजाहिर है।

इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा के लिए एक अनुकूल वातावरण तैयार करने में राज्य असफल है। असल में राज्य की नीतियां स्कूलों में चल रहे कुछ नवाचारों को और नए तरीकों को असफल बना देती हैं। उदाहरण के लिए घेर साईवाड में सरकारी स्कूल में दो कक्षाओं में पढ़ाने और सीखने के नए तरीके लागू किए गए थे और जैसे ही वे लोकप्रिय होने लगे वैसे ही उन शिक्षकों का वहाँ से तबादला कर दिया गया जो उसके लिए प्रशिक्षित किए गए थे। परिणाम यह हुआ कि जो कक्षाएं चल रही थीं और अच्छा काम कर रही थीं उनमें भी बाधा पैदा हो गई।

सरकार सरकारी स्कूलों में कक्षा 1 से 5 तक के बच्चों के लिए मुफ्त में पाठ्यपुस्तकें देती हैं, पर शहरी इलाकों में न तो अनाज की योजना है और न दोपहर के भोजन का कोई कार्यक्रम है। कई बच्चे ऐसे घरों से आते हैं जहाँ उन्हें सभी दिन नियमित रूप से भोजन नहीं मिलता और ऐसे बच्चे स्कूल के दिन भूखे रहते हैं।

शिक्षा के लिए संगठन और अवसर

कम आमदनी वाले और सामाजिक रूप से हाशिए पर रहने वाले समूहों द्वारा शिक्षा न पाने का एक कारण यह भी है कि कोई औपचारिक संगठन नहीं है। जयपुर में जिन बस्तियों का हमने अध्ययन किया है वहाँ हमने पाया कि हमारी शोध के दूसरे शहरी इलाकों की तुलना में यहां संगठनों के सदस्य और गतिविधियां बहुत कम हैं। घेर साईवाड इलाका और मनोहरपुरा बस्ती दोनों में कोई ऐसे संगठन नहीं थे जो शिक्षा से सम्बन्धित मुद्दों का ख्याल रखते। इन दोनों इलाकों में लोग सिर्फ एक ही संगठन से परिचित हैं वह है जाति पंचायत। जाति पंचायतें जाति के नियमों और रिवाजों को बनाए रखने से सम्बन्धित मुद्दों पर ध्यान देती हैं। इनमें शिक्षा पाने के बारे में कोई चर्चा नहीं होती। दूसरे गरीब इलाकों में हमने जो देखा यह इसके विपरीत है। बेंगलोर में अम्बेडकर संघ, महिला संघ या गिरिजा घरों द्वारा चलाए जा रहे धार्मिक संघों ने बच्चों को स्कूल भेजने को काफी प्रोत्साहित किया था।

भेदभाव और अभाव

खो-नागोरिया इलाके में हालांकि एक शैक्षिक संस्था ने स्कूल स्थापित किया है, पर वहाँ समुदाय के आधार पर कोई जुड़ाव नहीं है। इस इलाके में जाति पंचायत भी व्यक्तिगत और सामाजिक मुद्दों पर ध्यान देती है, जैसे तलाक पर जुर्माना, लेकिन उसने शिक्षा से सम्बन्धित मुद्दों पर चर्चा नहीं की। खो-नागोरिया का प्रमुख मदरसा आसपास के बच्चों के लिए कुरान इब्ज की कक्षाएं चलाता है। फिर भी मस्जिद के मौजूदा प्रमुख ने कहा कि मुस्लिम समुदाय के बच्चों के लिए शिक्षा के अवसरों को बढ़ाने की जरूरत है और मदरसा को आधुनिक करने की और एक नया स्कूल खोलने की भी जरूरत है।

अभी हाल तक खो-नागोरिया में जो पंचायत काम कर रही थी उसने शिक्षा को कोई महत्वपूर्ण मुद्दा नहीं माना। चूँकि यह इलाका जयपुर नगर का एक वार्ड (नं. 28) बन गया है इसलिए वहाँ प्राथमिक शिक्षा को हल करने की गुंजाइश और भी कम हो गई है। समुदाय के कई लोगों ने महसूस किया कि स्थानीय पार्षद ने चुनाव के बाद वार्ड का भ्रमण नहीं किया और उन्हें प्राथमिक शिक्षा की किसी योजना या कार्यक्रम का पता नहीं है। हालांकि कई लोगों ने स्थानीय प्राथमिक शाला की निष्क्रियता की शिकायत की पर वे इस समस्या के निदान के लिए किसी स्थानीय संगठन या प्रशासकीय इकाई तक पहुँचने में कामयाब नहीं हुए। इस इलाके में ग्राम शिक्षा समिति या स्कूल सुधार समिति जैसे कोई संगठन नहीं थे, जो गाँव या शहर के इलाके में काम करते हैं। ऐसी संस्थाएं बनाने में राज्य की उदासीनता यह प्रगट करती है कि शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण मसले की वह कितनी उपेक्षा करता है।

स्कूल — समुदाय सम्बन्ध

तीनों तरह के (सरकार निजी संस्थान और स्वैच्छिक संस्थाएं) स्कूलों को चलाने वाले ठीक से नहीं समझते कि शालाओं को समुदाय से सम्बन्धित होना चाहिए, खासतौर से बच्चों के सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन से। फिर

भी इन स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों की सामाजिक पृष्ठभूमि ऐसी है कि स्कूल के प्रबन्धकों और शिक्षकों को उनके साथ नजदीक का रिश्ता बनाना चाहिए। मजदूर वर्ग के अधिकांश गरीब लोग निचली जातियों और आदिवासी पृष्ठभूमि के हैं। उनके बच्चे न केवल पहली पीढ़ी के पढ़ने वाले हैं बल्कि वे ऐसे परिवारों से आते हैं जो निचले दर्जे के धन्यों में हैं। इनमें से ज्यादातर परिवार, (71 फीसदी) अनुसूचित जाति के समूहों के भी हैं और उनमें 31 फीसदी बच्चे जो स्कूल से बाहर हैं, उनके माता-पिता मुख्य तौर पर निचले दर्जे का काम करते हैं। फिर भी स्कूलों में ऐसी कुछ खास नीतियां या शिक्षकों का ऐसा कोई उन्मुखीकरण नहीं है कि जिससे प्रशासक और शिक्षक ऐसी पृष्ठभूमि वाले बच्चों को समझ पाएं और उनके नजदीक पहुँच पाएं। शिक्षकों की यह शिकायत कि माता-पिता अपने बच्चों का ख्याल नहीं रखते या स्कूल से सम्बन्धित मामलों की फिक्र नहीं करते यह बताता है कि शिक्षक मध्यवर्गीय पूर्वाग्रह से पीड़ित हैं।

जबकि सरकारी और निजी स्कूलों के प्राचार्य अपने इलाके से ज्यादा से ज्यादा बच्चे भर्ती करना चाहते हैं, शिक्षकों को ऐसे कोई निर्देश नहीं हैं कि वे बच्चों और उनके माता-पिता से कैसे रिश्ता बनाए। ज्यादातर शिक्षकों को बच्चों के परिवार की स्थिति का बहुत कम पता रहता है और यदि उन्हें पता है भी तो भी वे इस बारे में कोई सहानुभूति नहीं रखते।

इसी प्रकार निजी स्कूल और स्वैच्छिक संस्थाओं के स्कूल के प्रबन्धक इस बात का महत्व समझते हैं कि बच्चे स्कूल में दाखिला लें। लेकिन उनमें से किसी ने लोगों को जोड़ने का कोई कार्यक्रम नहीं बनाया और बाल श्रम तथा बाल विवाह के मुद्दों पर सीधी या परोक्ष कार्यवाही नहीं की, जबकि ये ऐसे मुद्दे हैं जो बच्चों को स्कूल आने से रोकते हैं।

स्वैच्छिक संस्था के स्कूल की सफलता बताती है कि यदि समुदाय की संस्कृति के प्रति संवेदनशील हुआ जाए और उसके कुछ तथ्यों को अपनाया

भेदभाव और अभाव

जाये तो स्कूल बेहतर ढंग से चलते हैं। कुछ शिक्षकों ने माताओं की बैठक करके माता-पिता की बैठकों में कम उपस्थिति की समस्या को हल करने की कोशिश की और माताओं को बैठक में बुलाने में सफल हुए। इससे पता चलता है कि समुदाय के सांस्कृतिक रूप और उसकी प्राथमिकताओं के प्रति ज्यादा संवेदनशील होने की जरूरत है।

मनोहरपुरा कच्ची बस्ती इलाके में लोग रोजी रोटी के लिए बाहर बहुत जाते हैं और ऐसा माना जाता है कि स्कूलों में ज्यादातर बच्चों का दाखिला न होने का यह एक महत्वपूर्ण कारण है। इस कच्ची बस्ती के कई निवासी समय-समय पर अपने गाँवों में लौट जाते हैं और जब उनके साथ उनके बच्चे चले जाते हैं तो वे स्कूल नहीं जा पाते हैं। फिर भी किसी भी स्कूल में ऐसा कोई पाठ्यक्रम नहीं है या सिखाने और सीखने का कोई तरीका नहीं है जिसमें गाँवों से लौटने वाले इन छात्रों की जरूरत पूरी हो सके।

लड़कियों के प्रति सांस्कृतिक पूर्वाग्रह

हाल में स्कूल के दाखिले के विवरण से पता चलता है कि इस इलाके में लड़कियों के लिए शिक्षा की सुविधाओं में सुधार हुआ है। ऐसा होने के कई कारण हैं। एक तो कई स्त्रियाँ खुद अपढ़ होने के कारण जो कठिनाई महसूस करती हैं उसके बारे में बताते हुए वे अपनी बच्चियों को स्कूल में दाखिल करना चाहती हैं। कई माताओं ने, जिनका हमने साक्षात्कार लिया, बताया कि उन्होंने कैसे अपने परिवार के पुरुष सदस्यों के एतराजों को दरकिनार किया और अपनी बेटियों को स्कूल भेजा। महिला शिक्षकों की भर्ती और हाल के जनजागरण कार्यक्रमों से भी लड़कियाँ स्कूल में भर्ती होने के लिए प्रेरित हुईं।

लेकिन हालात सुधरने पर भी, कई लड़कियों के लिए शिक्षा के मौके समान या सरल नहीं हैं। हमने तीन स्कूलों में पाँच साल में भर्ती का जो आँकड़ा

स्थानीय शिक्षा रपट - जयपुर

देखा उससे पता चलता है कि लड़कों की तुलना में लड़कियां ज्यादा संख्या में स्कूल छोड़ देती हैं। स्वैच्छिक संस्था के स्कूल में आँकड़े बताते हैं कि 1998 में लड़कियों की संख्या स्कूल में दर्ज बच्चों की कुल संख्या का 35 प्रतिशत था। मनोहरपुरा कच्ची बस्ती में, जहाँ सरकारी स्कूल निष्क्रिय है, एक फीस लेने वाला निजी स्कूल लोकप्रिय है और कई माता-पिता अपने बच्चों को, खासकर अपने लड़कों को निजी स्कूल में भेजते हैं। परिणामस्वरूप स्कूल के कुल बच्चों का 67 फीसदी हिस्सा लड़कों का है। 1998 में सरकारी स्कूल में कुल दर्ज बच्चों की संख्या का 45 फीसदी लड़कियां थीं, लेकिन कक्षा 4 के ऊपर लड़कियों की संख्या बहुत कम थी। सब मिलाकर स्कूल छोड़ने वाली लड़कियों की संख्या बहुत ज्यादा थी। 1995-2000 में तीनों स्कूलों के आँकड़े बताते हैं कि तीसरी कक्षा में लड़कियों की दर्ज संख्या 58 फीसदी कम हो गई थी।

इसके अलावा अनुसूचित जाति के परिवारों की और बड़े परिवारों की लड़कियों को उन लड़कियों से कम अवसर मिलते हैं जो ऊँची जाति के परिवारों की होती हैं। निचली जाति के परिवार शारीरिक श्रम में लगे रहते हैं, जैसे निर्माण काम की देहाड़ी मजदूरी, स्टेशन या बाजार में कुली या कचरा बीनने का काम। इस किस्म के कामों से परिवार की आमदनी भी स्थिर नहीं रहती और साथ ही यह आशंका भी बनी रहती है कि लड़कियों और स्त्रियों को घरू और गैर घरू काम के लिए उनका शोषण किया जायेगा।

परिवार के आकार का भी सीधा असर लड़कियों पर होता है। हमारे अध्ययन से पता चलता है कि इस इलाके में एक औसत परिवार का आकार 8.2 है (यह हमारे अध्ययन नमूने में सबसे ऊँचा है) और बड़े बच्चों के घर में रहने का यह एक मुख्य कारण है। कई लड़कियां छोटे बच्चों की देख भाल करने के लिए और घरू काम करने के लिए घर में रोक ली जाती हैं।

भेदभाव और अभाव

यह सब जानते हैं कि राजस्थान में लड़कियों पर ऐसी कई सांस्कृतिक बंदिशें हैं जो उन्हें शिक्षा से वंचित रखती हैं इसलिए उन विशेष मानकों और प्रक्रियाओं को पहचानना महत्वपूर्ण है जिनके कारण वे शिक्षा से वंचित होती हैं। अध्ययन में कुछ मुख्य बिन्दुओं को नीचे के बॉक्स में दिखाया गया है –

लड़कियों को शिक्षा से वंचित करने वाले सांस्कृतिक तत्व

- ऐसा माना जाता है कि शिक्षा लड़कियों को भ्रष्ट करती है और उन्हें अवज्ञाकारी बनाती है।
- अध्ययन किए गए क्षेत्र में परिवारों का औसत आकार 8.2 है। चूंकि मजदूर वर्ग में माता-पिता दोनों काम करते हैं इसलिए लड़कियों को छोटे बच्चों की देखभाल करने और घरू काम करने की जिम्मेदारी दे दी जाती है।
- जहाँ स्कूल घर से बहुत दूर होते हैं वहाँ माता-पिता लड़कियों को अकेले स्कूल नहीं भेजना चाहते।
- लड़कियों के वयस्क होने के बाद कई माता-पिता अपनी लड़कियों को स्कूल नहीं भेजते।
- माता-पिता को डर रहता है कि यदि उनकी लड़की शिक्षित हो गई तो उन्हें दुल्हा नहीं मिलेगा।
- लड़कियों को स्कूल न भेजना का एक बहुत बड़ा कारण बाल विवाह है।
- सुसराल वाले अपनी जवान बहू को अध्ययन करने में एतराज करते हैं चाहे वह अपने माँ-बाप के पास ही क्यों न रहती हो।
- जल्दी विवाह होने से लड़कियाँ जल्दी माँ बन जाती हैं और उनकी घरू जिम्मेदारियाँ बन जाती हैं।

निजी स्कूलों की बढ़ोतरी और परिणाम

बढ़ती हुई शहरी आबादी के लिए स्कूल कम होने से और उनमें भेदभाव होने से निजी स्कूलों की संख्या बढ़ी है। ये निजी स्कूल बच्चों की शैक्षिक जरूरतों को पूरा करने का दावा तो करते हैं पर उनसे कई समस्याएं भी पैदा होती हैं। यह बात शहर के गरीब इलाके की मनोहरपुरा कच्ची बस्ती में साफ दिखती है। यहाँ एक निजी स्कूल कई परिवारों की स्कूली जरूरतों को पूरा करता है। चूँकि स्कूल ने एक शून्य को भरा इसलिए कई माता-पिता ने निजी स्कूल को अपने बच्चे के लिए चुना। एक हरिजन स्त्री ने बताया, “अगर हम अपने बच्चों को निजी स्कूल में न भेजें तो कहाँ भेजें। सरकारी स्कूल के शिक्षक हमारे बच्चों से नफरत करते हैं।” इसी प्रकार, रजिया, जो अपनी बेटी को निजी स्कूल भेजती है, शिकायत करती है, कि सरकारी स्कूल का शिक्षक नीची जाति के बच्चों के साथ बुरा बर्ताव करते हैं। उन्हें अक्सर वे पानी नहीं पीने देते हैं और बच्चे प्यासे रह जाते हैं।

जो निजी स्कूल गरीबों और निम्न मध्यमवर्गीय लोगों की जरूरत पूरी करते हैं वे अक्सर अनुपयुक्त इमारतों में लगते हैं, उनके शिक्षक ठीक से प्रशिक्षित नहीं होते और वहाँ पढ़ाना-पढ़ना घटिया किस्म का होता है। मनोहरपुरा कच्ची बस्ती के ऐसे एक स्कूल में लोअर के.जी. से लेकर आठवीं तक कक्षाएं तक है। वहाँ 120 बच्चे हैं और यह दो छोटे मकानों में चलता है। ऑफिस से लगे हुए चार कमरे हैं। ऑफिस छः फुट लम्बा और छः फुट चौड़ा है और वहाँ एक टेबिल, एक रैक और किताबों के लिए कमरा है। दूसरे कमरे करीब 100 गज दूर हैं और ईंट तथा छप्पर के काम चलाऊ ढंग से बने हैं। पहली कक्षा में 30 छात्र हैं जो एक छप्पर के नीचे बैठते हैं। वहाँ दीवाल पर लटका एक ब्लैक बोर्ड है और पास ही तीसरी कक्षा है। पहली कक्षा और लोअर के.जी. एक ही कमरे में लगते हैं और इसी तरह दूसरी और चौथी तथा पाँचवी, छठवी कक्षा भी एक टीन शेड के नीचे लगती हैं। ये कक्षाएं एक ही ब्लैक बोर्ड पर काम करती हैं। शिक्षक उसी कमरे में एक के बाद दूसरी कक्षा लेता है। चूँकि

भेदभाव और अभाव

कमरों में एक ही खिड़की है इसलिए कक्षाएं दमघोटू हैं। सिर्फ कुछ कमरों में पंखे हैं। जब एक क्लास को पढ़ाया जाता है तो दूसरी क्लास को लिखने का काम दे दिया जाता है।

कई पालकों ने बताया कि वे 65 रूपया प्रतिमाह स्कूल फीस देते हैं जबकि स्कूल के प्रबन्धक कहते हैं कि वे सिर्फ 50 रूपया लेते हैं। इसके अलावा यदि फीस नहीं दी जाती है तो परीक्षा फल रोक लिया जाता है या बच्चे का नाम स्कूल के रजिस्टर से काट दिया जाता है। फीस के अलावा माता-पिता पोषाक, किताबों, बस्ता और अन्य जरूरतों के लिए भी खर्च करते हैं। परिणाम यह होता है कि माता-पिता साल भर में एक बच्चे पर करीब 1600 रूपया खर्च करते हैं जो उनके लिए बहुत ज्यादा होता है। बुनियादी शिक्षा पर इतना ज्यादा खर्च होने का एक फल यह होता है कि माता-पिता लड़कों को तो निजी स्कूलों में भेज देते हैं पर लड़कियों को नहीं भेजते और इस प्रकार लड़कियां शिक्षा पाने के अपने अधिकार से वंचित रह जाती हैं।

कुछ माता-पिता समझते हैं कि वे निजी स्कूलों बच्चे की योग्यता का ख्याल रखे बिना बच्चे को किसी भी कक्षा में भर्ती करा सकते हैं। उदाहरण के लिए एक स्कूल में पहली कक्षा के एक बच्चे को दूसरी कक्षा की किताब इसलिए दे दी गई क्योंकि उसके माता-पिता अपने बच्चे को दूसरी कक्षा में रखना चाहते थे, जबकि बच्चे में पहली कक्षा के पाठ्यक्रम को पूरा करने की भी क्षमता नहीं थी। हालांकि माता-पिता फीस देते हैं इसलिए उन्हें कुछ सेवा पाने का हक होना चाहिए लेकिन चूंकि वे गरीब हैं और सामाजिक रूप से हाशिए पर हैं इसलिए उन्हें महत्व नहीं दिया जाता। उन्हें शिक्षक और स्कूल के प्रशासक बहुत कम इज्जत और महत्व देते हैं। ऐसी विपरीत स्थिति में रहते हुए माता-पिता बच्चों को दिए जाने वाले शारीरिक दण्ड की प्रथा को चुनौती नहीं दे पाते।

कक्षा की गतिविधियां

विभिन्न कक्षाओं में जो अवलोकन किए गए उनके आधार पर हमने विभिन्न स्कूलों की निम्नलिखित स्थितियों और प्रथाओं का दर्ज किया। कक्षा में जो अवलोकन किए गए उसका मकसद शैक्षिक तरीकों पर ध्यान केन्द्रित करना नहीं था बल्कि यह समझना था कि क्लास में परस्पर चर्चा कैसे होती है, हालात क्या हैं, शिक्षक और छात्र के रिश्ते कैसे हैं, छात्रों के आपसी रिश्ते कैसे हैं, और कक्षा में बर्ताव किस प्रकार किया जाता है।

कक्षा में संगठन और पढ़ाने-पढ़ने के तरीके

मनोहरपुरा कच्ची बस्ती के निजी स्कूल और घेर सईवाड के सरकारी स्कूल में किए गए कुछ सामान्य अवलोकन

कक्षाओं के अवलोकन बताते हैं कि कक्षाएं (पढ़ाने और पढ़ने के तौर तरीके) अनुशासनबद्ध तरीके से चलाई जाती हैं। सबसे प्रमुख मुद्दे ये हैं कि हर कक्षा के लिए कम जगह है और छात्रों को रचनात्मक तरीके से जोड़े रखने में शिक्षक असमर्थ हैं। शिक्षक हर विषयों के लिए पाठ्य पुस्तकों पर अविश्लिषित रहते हैं और जो कुछ उनमें लिखा होता है मुख्यतः उन्हीं पर ध्यान देते हैं। आपसी संवाद का मुख्य जरिया ब्लैक बोर्ड होता है। कई शिक्षक ब्लैक बोर्ड पर लिखते हैं और तब काफी समय तक उनकी पीठ छात्रों की तरफ रहती है तथा वे बच्चों को व्यक्तिशः या सामूहिक रूप से व्यस्त नहीं रख पाते। बच्चों का ध्यान मुख्यतः बोर्ड से नकल करने में रहता है। निजी स्कूल में ड्राइंग की कक्षा के बच्चों को भी कहा जाता है कि वे बोर्ड पर बनी आकृति की नकल करें। उदाहरण के लिए एक दिन कक्षा तीन में शिक्षक ने बोर्ड पर मोर का चित्र बनाया और बच्चों से उसकी नकल करने के लिए कहा। बच्चों ने चुपचाप वैसा ही किया। चूंकि यह उम्मीद नहीं की जाती कि बच्चे कक्षा की चर्चा में योगदान देंगे, खुले सवाल, जवाब और चर्चाएं नहीं होतीं। सिर्फ सीधे सवालों और जवाबों को प्रोत्साहन दिया जाता है। खुद शिक्षक भी बोर्ड पर

भेदभाव और अभाव

लिखते समय कई गलतियां करते हैं। निजी स्कूलों में ज्यादा अनुशासन होता है और माता-पिता इसे स्कूल का एक सकारात्मक पहलू मानते हैं, खासतौर से सरकारी स्कूलों की तुलना में, जिन्हें वे पूरी तरह अराजक मानते हैं।

पढ़ाई में अनुशासन होने के अलावा पढ़ने और सीखने की चर्चा में पर्याप्त समय नहीं लगाया जाता। सरकारी स्कूल में शिक्षक काफी समय गप्प करते रहते हैं, जबकि छात्रों से कहा जाता है कि वे बोर्ड से या पाठ्यपुस्तक से नकल उतारें या कक्षा के मॉनीटर द्वारा कही बात को दोहरायें। परिणाम यह होता है कि छात्र अक्सर बातें करते हुए, खेलते हुए या कुछ न करते हुए अपना समय बिताते हैं। खेलकूद के लिए कोई कालखण्ड नहीं होता और शायद इसीलिए बच्चे बैचैन हो जाते हैं और कभी-कभी क्लास में शैतानी करते हैं।

दोनों स्कूलों में बैठने की जो व्यवस्था है उससे इस विचार को बल मिलता है कि शिक्षक एक ऊँची स्थिति पर हैं। बच्चे तो फर्श पर या फट्टी पर बैठते हैं पर शिक्षक बोर्ड के पास और कभी-कभी बोर्ड और डेस्क के बीच में कुर्सी पर बैठा रहता है। शिक्षक शायद ही कभी बच्चों के साथ बैठता है, और यहाँ तक की कापियों को भी डेस्क पर बैठकर या खड़े होकर जांचता है।

बैठने की इस व्यवस्था का अपवाद सरकारी स्कूलों में कक्षा 4 और 5 में है, जहाँ पढ़ाने के नये तरीके लागू होने के कारण शिक्षकों को मजबूरन छात्रों को छोटे समूहों में बैठाना पड़ता है और उनके साथ फर्श पर बैठकर सामूहिक गतिविधियों में भाग लेना पड़ता है। पढ़ाने की शैली में और शिक्षक तथा छात्रों के आपसी संवाद में महत्वपूर्ण बदलाव होने से पढ़ाने और पढ़ने के तरीकों में सुधार हो सकता है। इससे अध्यापन की बोध प्रणाली की सफलता माना जा सकता है (बोध जयपुर की एक स्वैच्छिक संस्था का नाम है)। इस योजना में कक्षा 4 और 5 चलाई जाती हैं और बच्चे शिल्प, खेल,

और गणित जैसी गतिविधियों में लगे रहते हैं, जिनमें वे अपनी रचनात्मकता को प्रकट करने के लिए प्रोत्साहित किए जाते हैं। शिक्षक रोज उनका होम वर्क देखता है और दूसरे दिन जो विद्यार्थी अपना होम वर्क नहीं करता उन्हें भोजन की छुट्टी नहीं मिलती और होम वर्क करना पड़ता। सरकारी स्कूल में, खासकर कक्षा 4 और 5 में बच्चों की जो संख्या बढ़ी है, वह इस कार्यक्रम के सकारात्मक असर का सबूत है।

नियंत्रण के तरीके

सरकारी और निजी दोनों स्कूलों में शिक्षक छात्रों को नियंत्रण करने के कई तरीके अपनाते हैं। कक्षा को नियंत्रित करने के लिए याने शांति व्यवस्था और आज्ञाकारिता को बनाये रखने के लिए सबसे प्रचलित तरीका है, धमकी, शारीरिक दण्ड और क्लास के मॉनीटर का उपयोग।

बच्चों को धमकाना, उनको नियंत्रित करने का बहुत प्रचलित तरीका है। साधारणतः इस प्रकार की धमकियां दी जाती हैं : “अगर तुमने शोर किया तो मैं तुम्हें फेल कर दूँगा”, “तुम लोग मंद बुद्धि हो, तुम्हें पढ़ाने का कोई फायदा नहीं”। कुछ शिक्षक छात्रों को अक्सर कमजोर घोषित कर देते हैं और उनका अपमान करते हैं। शिक्षक अक्सर सभी कक्षाओं में शारीरिक दण्ड देते हैं। जिन कारणों से पिटाई होती है वे हैं, कक्षा में शान्त न रहना, सवालियों का जवाब न दे सकना, होमवर्क पूरा न करना और कक्षा में देर से आना। कई मातापिता बताते हैं कि उन्होंने अपने बच्चों को स्कूल से इसलिए हटाया क्योंकि उनके साथ स्कूल में दुर्व्यवहार होता था।

सरकारी और निजी स्कूलों में एक समानता कक्षा में मानीटर की भूमिका के बारे में थी। बताया गया कि कक्षा का मानीटर “बुद्धिमानी के आधार पर” चुना जाता है लेकिन वह अक्सर शिक्षक का प्रिय छात्र होता है। शिक्षक मानीटर को नामजद करते हैं और उनसे कई काम कराते हैं। मानीटर कक्षा को

भेदभाव और अभाव

नियंत्रित करता है, खासकर जब शिक्षक कक्षा के बाहर जाता है या लिखाई के किसी काम में व्यस्त रहता है। जब मानीटर को किसी काम के लिए कहा जाता है तो मानीटर कक्षा पर नजर रखने के लिए खड़े होकर,, कभी कभी वह हाथ में एक छड़ी लिये अपने सहपाठियों को शान्त रखने की कोशिश करता है, या करती है। कभी-कभी जब कोई छात्र किसी सवाल का उत्तर नहीं दे पाता तो शिक्षक उस लड़के की पिटाई करने का निर्देश मानीटर को देता है। तब मानीटर शिक्षक की भूमिका करता है और अकसर वह अपने सहपाठी के प्रति कठोर और उग्र हो जाता है।

शिक्षक-छात्र संबंध

इन दोनों स्कूलों में शिक्षक और छात्र के रिश्ते संतोषजनक नहीं हैं यह इस बात से जाहिर होता है कि काफी छात्र (23 फीसदी) यह बताते हैं कि उनके स्कूल छोड़ने का कारण वहां होने वाला दुर्यवहार है। शिक्षकों से छात्र न सिर्फ डरते हैं बल्कि यह भी माना जाता है कि छात्र अच्छी पढ़ाई नहीं करता और स्कूल को नापसंद करता है इसके लिए शिक्षक ही जिम्मेदार हैं। शारीरिक दण्ड ही बच्चों को नियंत्रित करने का एकमात्र तरीका है, ऐसा समझने का मतलब यह है कि शिक्षक ने न केवल अच्छा व्यवहार पाने के बच्चों के अधिकार का हनन किया बल्कि उसे मिलने वाला सम्मान भी उसने खो दिया।

स्वैच्छिक संस्था का स्कूल

इन सभी स्कूलों से एकदम अलग, स्वैच्छिक संस्था के स्कूल की कक्षाएं इस अवधारणा पर केन्द्रित हैं कि शिक्षक बच्चों को उपलब्ध है और पढ़ाने और सीखने के तरीके उनके आसपास केन्द्रित हैं। बच्चों को आयु और पढ़ाई के स्तर के आधार पर 5-6 के समूहों में रखा जाता है न कि कक्षाओं के पारम्परिक तरीके से। चर्चा और सीखने-सिखाने की कक्षा के लिए हर समूह

स्थानीय शिक्षा रपट - जयपुर

पारम्परिक तरीके से पंक्तिवार न बैठकर अर्द्ध गोलाकार बैठता है और शिक्षक भी उसी स्तर पर सभीके साथ बैठता है। बच्चों को बोलने के लिए उत्साहित किया जाता है और अध्यापन में यह ध्यान रखा जाता है कि बच्चे विषय की पढ़ाई का आनन्द लें। शोधकर्ता सुचेता सिंह ने देखा कि बच्चों को न सिर्फ व्यस्त रखा जाता है बल्कि वे जो कुछ पढ़ाया गया है उसे समझ लेते हैं। कक्षाएं जीवन्त होती हैं और सरकारी या निजी स्कूलों में जो शोर होता है वह यहां नहीं होता।

स्वैच्छिक संस्था में एक अन्तर खासतौर से है कि छात्र शिक्षक को उनके नाम से बुलाते हैं। यहां एक अनौपचारिक भावना रहती है और शिक्षकों और बच्चों के बीच रिश्ते दोस्ताना रहते हैं। शिक्षक स्कूल के घण्टों के बाद छात्रों के साथ खेलते भी हैं। हर पीरियड 40 मिनट का होता है जिसमें न सिर्फ शिक्षक पढ़ाते हैं बल्कि छात्रों को बोलने और चर्चा करने के लिए प्रोत्साहित भी करते हैं। शिक्षण की प्रक्रिया के हिस्से के रूप में ऐसी कई गतिविधियां भी होती हैं जिनमें शिक्षक और छात्र दोनों शामिल रहते हैं। सरकारी और निजी स्कूलों से अलग इस स्कूल में कक्षा के मानीटर की कोई प्रथा नहीं है और शिक्षक शारीरिक दण्ड नहीं देते।

कक्षा में जाति और साम्प्रदायिक तत्व

एक गंभीर बात, जिसकी तरफ हमारी शोधकर्ता का ध्यान गया, वह यह है कि कक्षाओं में और शिक्षकों तथा छात्रों के बीच वार्तालाप में जाति और सम्प्रदाय का संकेत भी साफ मिलता है।

कक्षाओं में जातिवाद

- काफी संख्या में माता पिता ने अपने बच्चों को स्कूल से इसलिए निकाल लिया क्योंकि शिक्षक उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते। मातापिता मानते हैं कि ऐसे दुर्व्यवहार का कारण जातिभेद है।
- कई शिक्षक नीची कही जाने वाली जातियों के बच्चों द्वारा लाया गया पानी नहीं पीते। जब सरकारी स्कूल की 5 वीं कक्षा में नीची कही जाने वाली जाति के एक लड़के हरीश को शिक्षक नेस पानी लाने के लिए भेजा तो दूसरे शिक्षकों ने लोटे को तब तक छूने से मना कर दिया जब तक कि उसे सात बार मिट्टी से नहीं साफ किया जाता।
- सरकारी स्कूल की कक्षा 3 के ब्राह्मण छात्र गणेश को उसके लम्बे बालों के लिए सताया। जब गणेश को यह सताना बर्दाश्त नहीं हुआ तो गणेश ने स्कूल छोड़ दिया। वह फिर से स्कूल में प्रवेश नहीं होना चाहता।

बच्चों के बीच होने वाली चर्चा से स्पष्ट है कि बच्चे भी इस इलाके में धार्मिक और जातिगत फर्क के प्रति सजग हैं। जब स्वैच्छिक संस्था के स्कूल के छात्रों से एक त्यौहार पर निबंध लिखने के लिए कहा गया तो 10 साल के रईस ने लिखा कि ईद के दिन वे दोस्तों और रिश्तेदारों से गले मिलते हैं। कक्षा के एक लड़के ने रईस से पूछा कि क्या वे भंगियों से भी गले मिलते हैं और दूसरे बच्चे हंस पड़े। सरकारी स्कूल में रशीद ने पहली कक्षा के अपने सहपाठी कुलदीप को एक उत्सव में अपने घर आमंत्रित किया। कुलदीप ने धार्मिक अन्तर का हवाला देकर आमंत्रण मंजूर नहीं किया। हालांकि ऐसे उदाहरण धार्मिक और जातिगत पूर्वाग्रह की मौजूदगी का संकेत देते हैं, पर स्कूलों द्वारा इन मुद्दों को हल करने करने की कभी कोशिश नहीं की गयी। बच्चे अपने घरों और समुदाय के वातावरण से अपने साथ जो पूर्वाग्रह लाते हैं उनके बारे में शिक्षक सचेत नहीं थे। इन पूर्वाग्रहों को दूर करने की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया गया और इन पूर्वाग्रहों की उपेक्षा होने से स्कूल में ऐसे विचारों और फर्कों ने और भी जड़ें जमा लीं।

दूसरे स्कूलों के शिक्षकों के विपरीत, स्वैच्छिक संस्था के स्कूल के शिक्षकों ने बच्चों के बारे में नकारात्मक या शत्रुतापूर्ण टीका नहीं की और उनके द्वारा दुर्य्यवहार किये जाने के बारे में भी बच्चों के मातापिता ने शिकायत नहीं की। इससे पता चलता है कि यदि शैक्षिक और सामाजिक मुद्दों के दायरे में शिक्षकों का उन्मुखीकरण किया जाय या उन्हें प्रशिक्षण दिया जाय तो बच्चों और उनके सामाजिक माहौल के बारे में शिक्षकों के मन में जो पूर्वाग्रह होता है उसे दूर किया जा सकता है।

शिक्षक

शिक्षकों के प्रशिक्षण में कमी

शिक्षक प्रशिक्षण और उन्मुखीकरण का पता न सिर्फ पढ़ाने के तरीके से बल्कि शिक्षक और छात्रों के बीच के रिश्तों से और संस्था के रूप में स्कूल में शिक्षक के योगदान से भी चलता है। सरकारी और निजी स्कूलों के जिन शिक्षकों से साक्षात्कार किया गया उनमें से कई ने सीधे या परोक्ष रूप से छात्रों का मूल्यांकन और आकलन करते हुए बताया कि कई छात्रों को "पढ़ाया ही नहीं जा सकता"। कई शिक्षक ऐसा सोचते हैं कि गरीब परिवारों और निचली जातियों के बच्चों को "पढ़ाया ही नहीं जा सकता"। कई शिक्षकों का ख्याल है कि छात्रों की पढ़ने की क्षमता और कक्षा में उनकी भूमिका का संबंध शिक्षकों की कोशिशों से नहीं है। "कुछ अच्छा पढ़ते हैं", "अगर वे चाहें तो वे सीख सकते हैं", "उनमें रुचि नहीं है इस कारण वे पढ़ते नहीं हैं", "मैं पढ़ाता हूँ पर सीखना उन पर निर्भर है"— ऐसे वक्तव्यों से पता चलता है कि शिक्षकों का रुख ढीलाढाला है और वे यह नहीं मानते कि बच्चे पढ़कर सीखें इसमें उनकी कोई जिम्मेदारी है। छात्रों की योग्यता और उनके उन्मुखीकरण को उनकी पृष्ठभूमि से जोड़कर कई शिक्षक इस बात की जिम्मेदारी से बचते हैं कि बच्चों को कक्षा में रहने से लाभ मिलता ही है। छात्रों के अपने आकलन में कई शिक्षक ऐसा मानते हैं कि कुछ छात्रों को पढ़ाया जा सकता है और कुछ को नहीं पढ़ाया जा सकता। यह नजरिया इस

भेदभाव और अभाव

बात के लिए जिम्मेदार है कि कई शिक्षक अध्यापन में ज्यादा समय और ताकत नहीं लगाते।

स्वैच्छिक संस्था के शिक्षकों को देखने से पता चलता है कि शिक्षकों के प्रशिक्षण का एक समग्र कार्यक्रम ऐसे नजरिए को दूर में मदद कर सकता है। प्रशिक्षण से उन्हें यह अनुभव हुआ है कि उनके प्रयास से विद्यार्थी अच्छी पढ़ाई कर सकते हैं। स्वैच्छिक संस्था के स्कूल के शिक्षक पढ़ाने में ज्यादा मेहनत करते हैं और ज्यादा रुचि दिखाते हैं और यह मानते हैं कि सभी बच्चे पढ़ने योग्य हैं। ऐसा वे अपने प्रशिक्षण कार्यक्रम के कारण सोच पाते हैं।

बच्चों से नाराजी

शायद सरकारी और निजी स्कूलों में शिक्षक-छात्र सम्बन्धों के बारे में यह बात सबसे ज्यादा उल्लेखनीय है कि शिक्षकों में बच्चों और उनकी जिन्दगी के हालात के प्रति सहानुभूति की कमी है। नीची जाति के बच्चों के प्रति कई शिक्षकों का नजरिया और तौर तरीका कभी-कभी खुल्लमखुल्ला शत्रुतापूर्ण और अकसर छुपी नफरत वाला रहता है। माता-पिता ने जिन मामलों का उल्लेख किया है उनसे यह पता चलता है कि बच्चे किस सीमा तक कक्षा में और कक्षा के बाहर भेदभाव का सामना करते हैं और बच्चों के द्वारा स्कूल छोड़ने का यह कारण है। शिक्षक खुलकर यह स्वीकार नहीं करते कि वे छात्रों के साथ भेदभाव बरतते हैं और यह कहकर इन बातों को खारिज कर देते हैं कि ऐसा पहले कभी होता था। फिर भी एक शिक्षक ने नाराजी से बताया, “चूँकि सरकारी स्कूलों में ज्यादातर बच्चे निचली जाति समूह के हैं, हम खुद ही अच्छूत बन गए हैं।” यह रुख इन बच्चों के प्रति नाराजी की भावना का संकेत देता है और यह इस बात के लिए जिम्मेदार है कि इस पृष्ठभूमि के बच्चों को पढ़ाने के प्रति शिक्षकों में न रुचि है और न कोई निष्ठा।

शिक्षकों की सामाजिक पृष्ठभूमि और उनका उन्मुखीकरण

यह तो निराशाजनक है ही कि शिक्षा के क्षेत्र में ऐसे नजरिए अभी भी मौजूद हैं, लेकिन यह भी सच है कि निचली जाति समूहों के शिक्षकों की कमी के कारण छात्रों के प्रति भेदभाव होने में बढ़ोतरी होती है। जिन स्कूलों का अध्ययन किया गया है उनमें ज्यादातर शिक्षक पुरुष थे और उनमें से ज्यादातर ऊँची जाति की पृष्ठभूमि के थे। सिर्फ़ घेर सईवाड के सरकारी स्कूल में ज्यादातर शिक्षक महिलाएं थीं और वे भी ऊँची जाति के परिवारों की थीं। मनोहरपुरा के निजी स्कूल में छः शिक्षक थे, जिनमें से दो महिलाएं थीं और चार पुरुष, जिनमें से दो ऊँची जाति के थे और दो अनुसूचित जाति के थे। स्वैच्छिक संस्था के स्कूल में भी शिक्षकों का लिंग अनुपात ठीक नहीं था : वहाँ पन्द्रह पुरुष शिक्षक थे और तीन महिला शिक्षक थीं। चूँकि सभी स्कूलों में, खासकर सरकारी और निजी स्कूलों में, छात्र ज्यादातर निचली जाति के थे इसलिए शिक्षकों और विद्यार्थियों की जाति की पृष्ठभूमि में फर्क था। यह फर्क छात्रों के प्रति शिक्षकों की उदासीनता का आधार था।

बच्चों, उनके माहौल और संस्कृति के प्रति अनिश्चित नजरिया

छात्र जिन समुदायों और परिवारों से आते हैं उनकी संस्कृति और उनके सामाजिक रिवाजों के प्रति शिक्षकों का नजरिया उपेक्षापूर्ण है। एक ओर तो वे बाल-विवाह और लड़कियों की अशिक्षा जैसे सांस्कृतिक रिवाजों के प्रति वे सहनशील हैं और इन मामलों में हस्तक्षेप करना ठीक नहीं समझते। दूसरी तरफ, वे ऐसी संस्कृति और ऐसे हालात के प्रति कम सहनशील हैं जो माता-पिता को छात्रों के प्रति अच्छा और सहयोगी बनाते हैं। शिक्षक कहते हैं कि माता-पिता बच्चों की उपेक्षा करते हैं और उन्हें सहयोग नहीं दे पाते। इसके उदाहरण के रूप में शिक्षक यह कहते हैं कि उनके माता-पिता साक्षर नहीं हैं, वे बच्चों के गृहकार्य की फिक नहीं कर पाते, बच्चों को साफ कपड़े पहनाकर स्कूल नहीं भेज पाते और पालक-शिक्षक बैठकों में नहीं आते। कई शिक्षक माता-पिता की काम और रहन-सहन की परिस्थितियों के प्रति

भेदभाव और अभाव

सहानुभूति नहीं रखते और ऐसे बच्चों की सीमाएं नहीं समझते जो अपने परिवार में स्कूल जाने वाली पहली पीढ़ी हैं।

स्कूल के बाहर के बच्चों का जीवन

निष्क्रिय स्कूल, उदासीन शैक्षिक प्रशासन और बिना अधिकार वाले माता-पिता— इन सबके कारण कई बच्चे स्कूल से बाहर रहते हैं। तीन क्षेत्रों में स्कूल के बाहर के बच्चों के 15 प्रतिशत हिस्से का जो हमने सर्वेक्षण किया उसमें हमें उन हालातों के बारे में मालूम हुआ, जिसमें स्कूल के बाहर के बच्चे रहते हैं और ऐसे कई कारणों का पता चला जिनके कारण वे स्कूल से बाहर रहते हैं।

कभी दाखिला नहीं लिया

जिन बच्चों का साक्षात्कार लिया गया उनमें से 42 फीसदी बच्चों ने कभी स्कूलों में दाखिला नहीं लिया। इनमें से 62 फीसदी बच्चों के माता-पिता ने आर्थिक समस्या को दाखिला न लेने का कारण बताया। बच्चे को स्कूल में दाखिल क्यों नहीं कराया गया इस सवाल के उत्तर में सबसे ज्यादा कारण आर्थिक समस्या को बताया गया। बारीकी से पड़ताल करने पर पता चला कि जो लोग बहुत ज्यादा गरीब हैं याने जिन परिवारों की आमदनी उतार-चढ़ाव वाली होती है और जो बहुत भरोसेमन्द नहीं होती, उन परिवारों की हैसियत अपने बच्चों को स्कूल भेजने की नहीं होती है। कुछ लोगों ने आर्थिक समस्या का उल्लेख किया लेकिन ज्यादा सवाल करने पर उन्होंने दूसरे तत्वों का भी संकेत दिया, जैसे माता-पिता की मृत्यु से सम्बन्धित परेशानी, बाहर चले जाना, स्कूल में भर्ती के बारे में कम जानकारी, विश्वास की कमी आदि को बच्चों को स्कूल में दाखिल न करने का कारण बताया।

12 प्रतिशत लोगों ने स्कूल में बच्चों को दाखिल न करने का कारण बाहर चला जाना बताया। लेकिन साक्षात्कार लिए गये बच्चों में से 31 प्रतिशत

बच्चों ने माता-पिता की रुचि में कमी को कारण बताया। कुछ माता-पिता बहुत ज्यादा आर्थिक तंगी में थे या शहर में नये-नये ही आये थे। पर कई ऐसे भी थे जिन्हें पर्याप्त आर्थिक सहयोग था लेकिन वे खुद अपढ़ थे इसलिए उन्होंने अपने बच्चों को स्कूल में भर्ती करना महत्वपूर्ण नहीं समझा। यह रोचक बात है कि छोटे दुकानदारों के बच्चों को स्कूल जाने के अवसर कम दिखते हैं। उनमें न केवल स्कूल में दाखिल न होने की दर ऊँची है बल्कि स्कूल छोड़ने की दर भी ऊँची है। शिक्षा प्रणाली इन बच्चों तक पहुँचने में असफल है इसका सबसे अच्छा उदाहरण यह है कि बच्चे स्कूल तो जाना चाहते हैं लेकिन प्रणाली को उनके उन हालात की खबर नहीं है जिसके कारण वे स्कूल से वंचित रहते हैं।

स्कूल छोड़ना या छोड़ना

52 फीसदी बच्चों ने स्कूल में दाखिला लिया लेकिन या तो उन्हें स्कूल छोड़ा दिया गया या उन्होंने छोड़ दिया। इसमें से 22 फीसदी माता-पिता ने स्कूल छोड़ने के कारण आर्थिक कठिनाई बताया। इन परिवारों की आर्थिक पृष्ठभूमि उनकी जैसी ही थी जिन्होंने बच्चों को दाखिल नहीं किया था। ये ज्यादातर निचले दर्जे के मजदूर वर्ग के थे जिनकी रोज की या महीने की आय अनियमित थी। ज्यादातर मामलों में ये परिवार निर्माण कार्यों, रोज की मजदूरी और फल या सब्जी बेचने पर निर्भर थे और वही उनकी रोजी-रोटी का मुख्य जरिया था। खास बात यह है कि 33 फीसदी परिवारों ने बताया कि उन्होंने विवाह, बाहर चले जाने या बच्चों की देखभाल आदि सामाजिक तत्वों के कारण बच्चों का स्कूल छोड़ा दिया। बात यह उभरती है कि किस सीमा तक गैर आर्थिक और सामाजिक तत्व बच्चे को शिक्षा से दूर रखने में भूमिका अदा करते हैं। हालांकि ये तत्व बच्चों को शिक्षा से वंचित रखने में खास भूमिका अदा करते हैं, पर शिक्षक और बुनियादी शिक्षा से जुड़े अन्य लोग अक्सर इनको कमतर बताते हैं।

भेदभाव और अभाव

इसके अलावा अपने छात्रों के परिवारों के प्रति ज्यादातर शिक्षकों के उदासीन नजरिए का प्रभाव यहाँ साफ है। जिन परिवारों से साक्षात्कार लिया गया उसमें से सिर्फ 28 फीसदी ने कहा कि शिक्षक भी उनके घर आये थे। ज्यादातर मामलों में कभी कोई शिक्षक या स्कूली प्रशासन या अन्य संगठन का सदस्य इन बच्चों के घर नहीं आया था। जिन बच्चों का स्कूल छोड़ा गया उनमें से कई छात्रों के मामले में यदि शिक्षक ने जरा भी समझाइश दी होती तो बच्चा स्कूल में रुक जाता।

सरकारी स्कूलों के 54 फीसदी बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं। यह एक ऐसी बात है जो सरकारी स्कूलों के घटिया कामकाज की ओर इशारा करता है। स्कूल छोड़ने वाले 31 फीसदी बच्चे निजी स्कूलों के थे। दूसरी ओर स्वैच्छिक संस्था के स्कूल को सिर्फ 9 फीसदी बच्चों ने छोड़ा। माता-पिता और बच्चे निष्क्रिय स्कूलों को एक बड़ा मुद्दा मानते हैं और वे बताते हैं कि ये स्कूल कभी नियमित रूप से नहीं खुलते (खुद स्कूल ही बंद रहता है), वहाँ पढ़ाई ठीक नहीं है (शिक्षक या तो गैर हाजिर है या बिल्कुल नहीं पढ़ाता) और वहाँ बच्चों से अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता। स्कूल से बच्चों को हटाने के और भी कारण हैं (क्रम से) : घरू काम, पढ़ाई के साथ न चल पाना, शिक्षकों का खराब व्यवहार और परिवार में अचानक आया संकट।

बच्चे और मजदूरी

आम समझ के विपरीत, बहुत से बच्चे जो स्कूल नहीं जा रहे हैं वे घर में या किसी मजदूरी में भी पूरी तरह व्यस्त नहीं हैं। स्कूल के बाहर के बच्चों के हमारे अध्ययन से पता चलता है कि अध्ययन किए गए बच्चों का 6-13 आयु वर्ग के 74 फीसदी बच्चे घरू काम या घर के धन्धे में नहीं लगे हैं। ये बच्चे किसी मजदूरी में या किसी काम में भी नहीं लगे हैं। बच्चों से जो साक्षात्कार लिया गया उसके आंकड़ों से पता चलता है कि उनके दिन (प्रतिदिन 6 घंटे से ज्यादा) का ज्यादातर हिस्सा अपने छोटे भाई बहनों और मित्रों के साथ खेलने में निकल जाता है। कई लड़कों ने बताया कि वे ताश खेलते हैं, फोटो

कार्ड खरीदते, अदल-बदल करते या बेचते हैं, विभिन्न मौसमों में कबड्डी, क्रिकेट, लकड़ी डांग खेलते हैं या टीवी देखते हैं या फिर दिन में यहाँ-वहाँ घूमते हैं। स्कूल के बाहर के कई बच्चे, जिन्हें स्कूल छोड़ा दिया गया था या जिन्होंने छोड़ दिया था, खेद प्रगट करते हैं कि उन्होंने स्कूल में पढ़ाई जारी नहीं रखी और उन्होंने स्कूल लौटने की इच्छा प्रकट की। लेकिन किसी को स्कूल लौटने की सम्भावना के बारे में या फिर से नाम दर्ज कराने के तरीके के बारे में पता नहीं था।

लेकिन मजदूरी ज्यादातर बच्चों के लिए स्कूल न जाने का एक सीधा कारण था। शहर में और वातावरण में बाल श्रम साफ नजर आता है और उसका चलन भी बहुत ज्यादा है और जैसा कि दूसरे अध्ययनों से पता चला है, सरकार ने बाल श्रम विरोधी कानून को लागू नहीं किया है या बहुत कम लागू किया है। हमारे अध्ययन में गरीब इलाकों के बच्चों के कई कामों और कई मजदूरियों का पता चला है। अध्ययन में 26 प्रतिशत बच्चे मजदूरी में लगे थे या ऐसे काम में लगे थे जिसे सहायक कहा जाता है। मनोहरपुरा कच्ची बस्ती में बाहर से आए बंगाली परिवारों के बच्चे कचरा बीनते थे। वे रोज 6 घण्टे कचरे के ढेर से और कबाड़ से री-साईकिल होने वाली चीजें बीनते थे। डिपो से उन्हें 10-15 रुपया प्रतिदिन मिलता था या फिर वे सप्ताह के अंत में इकट्ठी की हुई चीजें बेचकर 300-400 रुपया कमा लेते थे। अनुसूचित जाति के परिवारों के बच्चे सफाईगिरी का काम करते थे। कुछ बच्चे दुकानों में सहायक के रूप में या कारीगरी में सहायक के रूप में काम करते थे। कई युवा लड़कियां मध्यवर्गीय और उच्च वर्गीय घरों में अपनी माँ के साथ काम पर जाती थीं।

जवाहरात उद्योग ने 1991 के बाद उन्नति की है और यह कई बच्चों के लिए एक आकर्षक उद्योग बन गया है। इसमें कई बच्चे काम करते हैं पर जब इनका साक्षात्कार लिया गया तो कई बच्चों ने बताया कि वे अभी भी सीख रहे हैं और उन्हें पैसा नहीं दिया जाता। सामान्यतः जवाहरात पॉलिश करने की इकाइयों में अक्सर मुस्लिम और मध्यवर्गीय परिवार काम करते हैं और

भेदभाव और अभाव

उनमें बहुत थोड़े ऐसे हैं जो जवाहरात के काम के साथ स्कूल भी जाते हैं। खो-नगोरिया इलाके में कई घरों में जवाहरात की मशीन लगी है और वे बाल मजदूरों को रखते हैं। ज्यादातर बच्चे 10-16 आयु के हैं और पॉलिश का काम करते हैं। वे 6-8 घंटे रोज काम करते हैं और उन्हें 15-20 रुपया रोजाना मिलता है।

गरीबी के दुष्प्रक्र में फंसे कई माता-पिता इसमें अक्लमंदी मानते हैं कि शिक्षित होने से बेहतर है कि उनके बच्चे कोई कारीगरी या व्यापार सीख लें। बाल श्रम को वैधानिकता देने के लिए ऐसे आकलन या ऐसी समझ को आधार माना जाता है। ऐसा लगता है कि कई बच्चों ने खुद ही इन विचारों को आत्मसात कर लिया है। किसी कौशल को सीखने को या किसी काम के अनुभव को वे इसलिए महत्व देते हैं कि वे बाद में उससे कमाई कर सकेंगे। यहाँ तक कि 11 और 12 वर्ष के बच्चे अपने परिवार का कमाऊ सदस्य होने के लिए ऐसे प्रशिक्षण को महत्वपूर्ण मानते हैं। लेकिन बड़े बच्चे जो 13-16 साल के हैं यह खेद जताते हैं कि उन्हें उद्योग काम देने लायक नहीं मानते, जबकि उन्होंने अपने बचपन और शिक्षा के मौके की बलि दी है।

शिक्षा से वंचित रहना और नागरिकता में भेदभाव

अपने खुद का आकलन और खुद की टीका करते हुए बच्चे यह जाहिर करते हैं कि स्कूल जाना या न जाना एक महत्वपूर्ण चिन्ह हो गया है। स्कूल जाने वाले बच्चे स्कूल न जाने वाले बच्चों को "गंदा", "अवज्ञाकारी", "लभंगा", "झगडालू" और "गंदगी जुबान" वाला बच्चा मानते हैं। दूसरी ओर, स्कूल के बाहर के बच्चे स्कूल जाने वाले बच्चों को "साफ-सुथरा", "अच्छी पोशाक वाला" और "ठीक से बोल सकने वाला" मानते हैं।

ऐसी छाप लगाये जाने से और इस छाप के पीछे के नजरिए से और इससे पैदा हुए कामों से भेदभाव का ऐसा संसार मजबूत और पुनर्जीवित होता है जो पहले से मौजूद है। यदि शिक्षा का मकसद बच्चों को जीवन में बराबरी के

स्थानीय शिक्षा रपट - जयपुर

मौके देना है और उन्हें एक दूसरे के साथ बराबर व्यवहार करने के योग्य बनाना है तो समान रूप से दी जाने वाली अच्छी शिक्षा राज्य की नीति की आधारशिला होनी चाहिए। तथापि जो नीतियां बनी हैं उन्होंने इस पर जोर नहीं दिया कि स्कूल जाना एक अनुभव बने और एक ऐसी प्रक्रिया बनाने पर जोर नहीं दिया है जिसमें भेदभाव के रिवाज को चुनौती दी जा सके। जिन माता-पिता ने यह देखा कि स्कूल अब बच्चों को गधे घोड़ों की तरह मानते हैं, उन्होंने यह भी देखा कि स्कूल में भेदभाव ठूस-ठूस कर भरा है और वहाँ गरीबों और नीची जाति के बच्चे के साथ गधों की तरह व्यवहार होता है।

ऐसे अंदरूनी पूर्वाग्रह को दूर करने के लिए ऐसे उन्मुखीकरण से शुरूआत होनी चाहिए जो स्कूल जाने को केवल आँकड़े का खेल मानने से आगे भी जाता है। जैसा कि राजस्थान की साक्षरता, खासकर लड़कियों की शिक्षा के अपने अध्ययन में एनगोल्ड नामक नृत्यशास्त्री (एन्थ्रोपोलाजिस्ट) ने बताया है कि शिक्षा पाने के अधिकार का निषेध तब तक बना रहेगा, जब तक कि शिक्षा देना प्रमुख संस्कृति की "इज्जत" का हिस्सा नहीं बन जायेगा। इसमें यह बात भी जोड़ना जरूरी है कि सभी लोग, खासकर शिक्षा की व्यवस्था के मुख्य अभिनेता, जैसे शिक्षक, प्रशासक और नेता यह स्वीकार करें कि सभी बच्चों को एक ऐसी शिक्षा प्रणाली पाने का अधिकार है जो न्यायपूर्ण है और जो उनके लिए एक गुणात्मक, आनंददायक और योग्यता प्रदान करने वाली शिक्षा सुनिश्चित कर सकती है। खासकर एक ऐसी शिक्षा प्रणाली होनी चाहिए जो सभी बच्चों के साथ सम्मान का व्यवहार करे और जो उन्हें विरासत में मिली तमाम असमानताओं के खिलाफ सवाल खड़ा करने के योग्य बना सके।

सुझाव

(एक) प्राथमिक शिक्षा के लिए राज्य की भूमिका बढ़ाना

किसी समुदाय या समाज में स्कूल केन्द्रीय संस्थाओं के रूप में स्थापित हों और वे स्थिर और प्रभावी तरीके से चलें इसके लिए यह महत्वपूर्ण है कि राज्य, समाज और शिक्षकों का योगदान एकीकृत किया जाए। स्कूलों को और स्कूल की पढ़ाई को सिर्फ राज्य या सिर्फ समाज की जिम्मेदारी नहीं समझा जा सकता। प्राथमिक शिक्षा के प्रति एक समन्वयपूर्ण नजरिया होना चाहिए जिसमें राज्य और समाज दोनों शामिल होना चाहिए। राज्य न सिर्फ स्कूलों के लिए ज्यादा धन खर्च करें, बल्कि उसे स्कूलों के प्रशासन की तरफ ज्यादा ध्यान देना चाहिए। राज्य के लिए यह जरूरी है कि वह शिक्षा को, खासकर प्रारम्भिक शिक्षा को ऐसा बुनियादी क्षेत्र माने जो ज्यादा आधार वाले और टिकाऊ विकास का सहायक बने। इसमें, राज्य के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वह प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में मुख्य खिलाड़ी की भूमिका अदा करता रहे और यह न सोचे कि सभी को प्रारम्भिक शिक्षा देने के लिए बाजार कोई उपयोगी विकल्प है।

(दो) स्कूल के प्रशासकीय ढांचे के विकेन्द्रीकरण को मजबूत बनाना

विकेन्द्रीकृत ढांचे की हमें तुरन्त जरूरत है – जैसे स्कूल समिति या स्कूल सुधार समिति, जो स्कूल के कामकाज को जयपुर में स्थापित किये जाने वाले विकेन्द्रीकृत प्रशासकीय ढांचे से जोड़ सकें। उनका न होना आश्चर्यजनक है, पर विस्तृत होती हुई स्कूल प्रणाली के संदर्भ में ऐसा ढांचा अपरिहार्य है। स्कूल समिति के सदस्य न केवल (वार्ड या जोन से) निर्वाचित प्रतिनिधि हो सकते हैं, बल्कि उन बच्चों के माता-पिता भी हो सकते हैं जो उन वार्डों में स्कूल में पढ़ते हैं। नगर निगम की शिक्षा समिति एक ऐसी सक्रिय इकाई होनी चाहिए, जो शहर में प्रारम्भिक शिक्षा की प्रणाली को बढ़ाने के लिए सुनिश्चित नीतियां और कार्यक्रम बनाये।

स्थानीय शिक्षा रपट - जयपुर

ऐसे ढांचे के लिए दिये जाने वाले प्रशिक्षण में सभी सदस्य शामिल होना चाहिए और उसमें ये जानकारी दी जानी चाहिए कि उन्हें बैठक बुलाने का अधिकार है (और उन्हें हेडमास्टर के लिए रुकने की जरूरत नहीं है), वे कागजात देख सकते हैं और शिक्षकों को जवाबदेह ठहरा सकते हैं आदि। सदस्यों को अपनी भूमिका प्रभावी ढंग से अदा करने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए और उन्हें स्कूल में स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र दिवस के कार्यक्रमों के आयोजनों तक सीमित नहीं रखना चाहिए। सदस्यों के इन अधिकारों को स्पष्ट करना चाहिए कि वे स्कूल के ढांचे का निरीक्षण कर सकते हैं और उसका रखरखाव कर सकते हैं, जैसे कक्षाएं, चारदीवारी, शौचालय, पीने का पानी आदि। इसके अलावा सदस्यों को यह भी जोर देकर यह बताया जाना चाहिए कि बच्चों के अधिकार क्या हैं, और सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रथाएं क्या हैं। जैसे, समुदाय में बाल श्रम और बाल विवाह का प्रचलन जो बच्चों को स्कूल से वंचित रखते हैं। उनके प्रशिक्षण में उन्हें ऐसे स्कूलों या इलाकों के सफल मॉडल के उदाहरण भी बताये जाना चाहिए, जिनमें स्कूल छोड़े जाने की समस्या को रोका गया है और उनके व्यावहारिक और सम्भव उपाय किए गए हैं।

(तीन) बाल श्रम की मनाही

इस क्षेत्र में बाल श्रम एक बड़ी समस्या बना हुआ है और उसे स्वीकारने और विधि सम्मत मानने की बात को रोकना बहुत जरूरी है। सरकार को बाल श्रम रोकने के कठोर उपाय करना चाहिए और उसके खिलाफ जागरूकता पैदा करना चाहिए। बाल श्रमिकों का पुनर्वास बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करने से चार गुना ज्यादा महंगा होता है। प्राथमिक शिक्षा की एक ऐसी अनुपयुक्त और प्रभावहीन प्रणाली बनाना जो टिकाऊ नहीं रहती और फिर बच्चों का पुनर्वास करने के लिए ढांचा निर्मित करने में खर्च करना— ये दोहरे भार ढोने के बदले राज्य को एक ऐसी प्रणाली स्थापित करना चाहिए जिसमें सभी बच्चे शामिल किए जा सकें।

(चार.) लड़कियों के शिक्षा पाने के अधिकार का विस्तार

प्राथमिक शिक्षा में जो जेन्डर का अंतर है उसे भरने के लिए राज्य को कई कार्यक्रम लागू करने की जरूरत है। राज्य को चाहिए कि वह बाल श्रम की प्रथा के विरुद्ध काम करने के लिए विभिन्न विभागों को निर्देश दे। इस निषेध के बारे में जानकारी मीडिया का उपयोग करके मुख्य कर्मचारियों, जैसे शिक्षकों, शिक्षा प्रशासकों और विकेन्द्रीकृत स्थानीय समितियों के सदस्यों को प्रशिक्षण के दौरान दी जानी चाहिए। ऐसे कर्मचारियों को यह अधिकार दिया जा सकता है कि वे कार्यवाही करने की पहल कर सकें और बाल विवाह करने पर जुर्माना कर सकें।

(पांच) शिक्षक प्रशिक्षण का उन्मुखीकरण

स्कूल को एक आकर्षक स्थान बनाने के लिए जो उपाय किये जाएं और कार्यक्रम बनाये जाएं उन्हें चाहिए कि वे यह ध्यान दें कि शिक्षा प्रणाली में शिक्षक सक्रिय घटक बनें। शिक्षकों को इस बात के लिए जागरूक करना चाहिए कि उन्हें माता-पिता और बच्चों की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को बेहतर ढंग से समझने की जरूरत है। शिक्षक अपढ़ माता-पिता की सांस्कृतिक समस्याओं के प्रति संवेदनशील नहीं होते और वे बाल विवाह बन्धुआ मजदूरी आदि जैसी प्रथाओं के प्रति सहिष्णु बने रहना चाहते हैं, जो बच्चों की शिक्षा के अवसरों पर असर डालते हैं। प्रशिक्षण और नीतियों को चाहिए कि वे शिक्षकों की इस विरोधाभासपूर्ण समझ को बदलें। माता-पिता के संस्कृति और उनके व्यक्तित्वों के प्रति सहिष्णु और संवेदनशील बनने के महत्व की बात को शिक्षकों प्रशिक्षण कार्यक्रमों शामिल किया जाना चाहिए। पर इसके साथ ही प्रशिक्षण में यह बात भी ध्यान रखना चाहिए कि शिक्षक बाल विवाह, जेन्डर भेद को विधि सम्मत और क्षमा योग्य न मानें और बच्चों को स्कूल भेजने में माता-पिता की लापरवाही को उनका ऐसा व्यक्तिगत और सांस्कृतिक मामला न मानें जिसे वे हल नहीं कर सकते।

स्थानीय शिक्षा रपट - जयपुर

शिक्षक-छात्र के रिश्तों के बारे में शिक्षा की नई प्रणालियों और नई सोच की शुरुआत होना चाहिए। यह विचार कि शिक्षक श्रेष्ठ होता है और छात्रों का दर्जा नीचा होता है, बच्चों को नियंत्रित करने की जरूरत है और उन्हें शारीरिक दण्ड देना चाहिए, कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिनकी फिक्र की जाना चाहिए।

(छः) स्कूलों के निरीक्षण और उनकी समीक्षा में सुधार

शिक्षा विभाग को ज्यादा सक्रिय और सतर्क भूमिका निभाने की जरूरत है। निजी और स्वैच्छिक संस्थाओं के स्कूलों का निरीक्षण नियमित रूप से नहीं होता। जहाँ तक शिक्षा विभाग के कामकाज का सवाल है, इस बात की जरूरत है कि वह स्कूलों के बुनियादी ढांचों, शिक्षकों की योग्यता और उनके चयन की, तथा स्कूल के रजिस्टर और दस्तावेजों के रखरखाव की नियमित रूप से जाँच करें। इसके अलावा विभाग को चाहिए कि वह पढ़ने पढ़ाने की प्रणालियों, नये पाठ्यक्रम के उपयोग और बच्चों साथ किए जाने वाले व्यवहार के बारे में सभी सरकारी और निजी स्कूलों का आकलन और मार्गदर्शन करे।

(सात) बच्चों की संकट निधि

जब घर में माता या पिता, खासकर पिता की मृत्यु हो जाती है या जब परिवार में संकट पैदा होते हैं, तो बच्चों को स्कूल से हटा लिया जाता है। ऐसे मौकों पर आर्थिक सहायता या चीजों की सहायता ऐसे बच्चों को दी जानी चाहिए जिससे उनका स्कूल में आना जारी रहे। संकट में पड़े बच्चों की निधि उपलब्ध होना चाहिए जिसके लिए सभी पार्षद, ब्लॉक एजुकेशन कार्यालय, शिक्षक और शिक्षा समिति के सदस्य आवेदन कर सकें।

(आठ) स्कूलों के लिए ब्लॉक पुरस्कार

स्कूलों का स्तर और गुणवत्ता बनाये रखने का एक तरीका यह भी है कि वार्ड या जोन के स्तर पर स्कूलों को पुरस्कार दिये जाएं। स्कूलों का मूल्यांकन

भेदभाव और अभाव

उनके कामकाज, उपस्थिति के स्तर,, बुनियादी ढांचे के रखरखाव, शिक्षकों के काम और बच्चों की उपलब्धि के स्तर के आधार पर किया जा सकता है। इन पुरस्कारों का प्रचार किया जा सकता है और ये स्कूलों की गुणवत्ता और उनका स्तर स्थापित करने के लिए एक तरीका बन सकते हैं।

(नौ) विकेन्द्रित आँकड़े इकट्ठा करना

माइक्रोप्लानिंग, स्कूलों तक पहुँच पाने के बारे में जानकारी, हर स्कूल के बुनियादी ढांचे की जरूरतों और स्कूल छोड़ने वाले बच्चों के आँकड़े इकट्ठा करने की और विकेन्द्रित स्तर पर, जैसे वार्ड ब्लॉक पर रखने की जरूरत है। इन उपायों के जरिये संस्थानों का आवंटन, निरीक्षण और सबसे ज्यादा जरूरतमंद और सबसे ज्यादा वंचित क्षेत्रों को सहायता की प्राथमिकता तय की जा सकती है। कम दर्ज संख्या और उपस्थिति के आँकड़ों में स्कूलों की सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि के बारे में ब्यौरा भी होना चाहिए, और इसके कारण भी बताए जाना चाहिए कि स्कूल क्यों अच्छी तरह नहीं चल रहे हैं। हर छः माह में समीक्षा करके और प्रधानाध्यापकों/प्रधानाध्यापिकाओं और विकेन्द्रित प्रशासकीय ढांचों से मिली जानकारी के आधार पर आँकड़े ताजा किए जा सकते हैं। ऐसे आँकड़े स्कूल और स्थानीय स्तर पर भी उपलब्ध होना चाहिए।

